तत्त्वार्थसूत्रका महत्त्व

महत्त्व और उसका कारण

इसमें संदेह नहीं, कि तत्त्वार्थसूत्रके महत्त्वको श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायोंने समानरूपसे स्वीकार किया है। यही सबब है कि दोनों सम्प्रदायोंके विद्वान आचार्योंने इसपर टीकायें लिखकर अपनेको सौभाग्यशाली माना है। सर्वसाधारणके मनपर भी तत्त्वार्थसूत्रके महत्त्वकी अमिट छाप जमी हुई है।

दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति। फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुङ्गवैः ॥

इस पद्यने सर्वसाधारणकी दृष्टिमें इसका महत्त्व बढ़ानेमें मदद दी है। यही कारण है कि कम-से-कम दिगम्बर समाजकी अपढ़ महिलायें भी दूसरोंके द्वारा सूत्रपाठ सुनकर अपनेको धन्य समझने लगती हैं। दिगम्बर समाजमें यह प्रथा प्रचलित है कि पर्यूषणपर्वके दिनोंमें तत्त्वार्थसूत्रकी खासतौरसे सामूहिक पूजा की जाती है और स्त्री एवं पुरुष दोनों वर्ग बड़ी भक्तिपूर्वक इसका पाठ किया या सुना करते हैं। नित्यपूजामें भी तत्त्वार्थसूत्रके नामसे पूजा करनेवाले लोग प्रतिदिन अर्घ चढ़ाया करते हैं और वर्तमानमें जबसे दिगम्बर समाजमें विद्वान दृष्टिगोचर होने लगे, तबसे पयूर्षणपर्वमें इसके अर्थका प्रवचन भी होने लगा है। अर्थ-प्रवचनके लिए तो विविध स्थानोंकी दि० जैन जनता पर्यूषणपर्वमें बाहरसे भी विद्वानोंको बुलानेका प्रबन्ध किया करती है। तत्त्वार्थसूत्रकी महत्ताके कारण ही श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायोंके बीच कर्त्तविषयक मतभेद पैदा हुआ जान पड़ता है।

यहाँपर प्रश्न यह पैदा होता है कि तत्त्वार्थसूत्रका इतना महत्त्व क्यों है ? मेरे विचारसे इसका सीधा एवं सही उत्तर यही है कि इस सूत्रग्रन्थके अन्दर समूची जैन संस्कृतिका अत्यन्त कुशलताके साथ समावेश कर दिया गया है।

संस्कृति-निर्माणका उद्देश्य

संस्कृति-निर्माणका उद्देश्य लोक-जीवनको सुखी बनाना तो सभी संस्कृति-निर्माताओंने माना है। कारण कि उद्देश्यके बिना किसी भी संस्कृतिके निर्माणका कुछ भी महत्त्व नहीं रह जाता है। परन्तु बहुत-सी संस्कृतियाँ इससे भी आगे अपना कुछ उद्देश्य रखती हैं और उनका वह उद्देश्य आत्मकल्याणका लाभ माना गया है। जैन संस्कृति ऐसी संस्कृतियोंमेंसे एक है। तात्पर्य यह है कि जैन संस्कृतिका निर्माण लोकजीवनको सुखी बनानेके साथ-साथ आत्मकल्याणकी प्राप्ति (मुक्ति) को ध्यानमें रख करके ही किया गया है।

संस्कृतियोंके आध्यात्मिक और भौतिक पहलुओंके प्रकार

विश्वकी सभी संस्कृतियोंको आध्यात्मिक संस्कृतियाँ माननेमें किसीको भी विवाद नहीं होना चाहिए; क्योंकि आखिर प्रत्येक संस्कृतिका उद्देश्य लोकजीवनमें सुखव्यवस्थापन तो है ही, भले ही कोई संस्कृति आत्मतत्त्वको स्वीकार करती हो या नहीं करती हो। जैसे चार्वाककी संस्कृतिमें आत्मतत्त्वको नहीं स्वीकार किया गया है फिर भी लोकजीवनको सुखी बनानेके लिए "महाजनो येन गतः स पन्था" इस वाक्यके द्वारा उसने लोकके लिये सुखकी साधनाभूत एक जीवन-व्यवस्थाका निर्देश तो किया ही है। सुखका व्यवस्थापन और दुःखका विमोचन ही संस्कृतिको आध्यात्मिक माननेके लिये आधार है। यहाँतक कि जितना भी भौतिक विकास है उसके अन्दर भी विकासकर्त्ताका उद्देश्य लोकजीवनको लाभ पहुँचाना ही रहता है अथवा रहना चाहिये। अतः समस्त भौतिक विकास भी आध्यात्मिकताके दायरेसे पृथक् नहीं है। लेकिन ऐसी स्थितिमें आध्यात्मिकता और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भौतिकताके भेदको समझनेका एक ही आधार हो सकता है कि जिस कार्यके अन्दर आत्माके लौकिक लाभकी दृष्टि अपनायी जाती है वह कार्य आध्यात्मिक और जिस कार्यमें इस तरहके लाभकी दृष्टि नहीं अपनायी जाती है, या जो कार्य निरुद्दिष्ट किया जाता है वह भौतिक माना जायगा।

यद्यपि यह सभव है कि आत्मा या लोकके लाभकी दृष्टि रहते हुए भी कर्तामें ज्ञानकी कमीके कारण उसके द्वारा किया गया कार्य उन्हें अलाभकर भी हो सकता है परन्तु इस तरहसे उसकी लाभसम्बन्धी दृष्टिमें कोई अन्तर नहीं होनेके कारण उसके उस कार्यकी आध्यात्मिकता अक्षुण्ण बनी रहती है। अतः आत्मतत्त्वको नहीं स्वीकार करनेवाली चार्वाक जैसी संस्कृतियोंकी आध्यात्मिक संस्कृतियाँ मानना अयुक्त नहीं है।

यह कथन तो मैंने एक दृष्टिसे किया है। इस विषयमें दूसरी दृष्टि यह है कि कुछ लोग आध्यात्मिकता और भौतिकता इन दोनोंके अन्तरका इस तरह प्रतिपादन करते हैं कि जो संस्कृति आत्मतत्त्वको स्वीकार करके उसके कल्याणका मार्ग बतलाती है वह आध्यात्मिक संस्कृति है और जिस संस्कृतिमें आत्मतत्त्वको ही नहीं स्वीकार किया गया है वह भौतिक संस्कृति है। इस तरह आत्मतत्त्वको मानकर उसके कल्याणका मार्ग बतलाने वाली जितनी संस्कृतियां है वे सब आध्यात्मिक और आत्मतत्त्वको नहीं माननेवाली जितनी संस्कृतियाँ हैं वे सब भौतिक संस्कृतियाँ ठहरती हैं। इस विचारधारासे भी मेरा कोई मतभेद नहीं है, कारण कि यह कथन केवल दृष्टिभेदका ही सूचक है—आध्यात्मिकता और भौतिकताके मूल आधारमें इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता है।

आध्यात्मिकता और भौतिकताके अन्तरको बतलानेवाला एक तीसरा विकल्प इस प्रकार है—एक ही संस्कृतिके आध्यात्मिक और भौतिक दोनों पहलू हो सकते हैं। संस्कृतिका आध्यात्मिक पहलू वह है जो आत्मा या लोकके लाभालाभसे सम्बन्ध रखता है और भौतिक पहलू वह है जिसमें आत्मा या लोकके लाभालाभका कुछ भी ध्यान नहीं रखकर केवल वस्तुस्थितिपर ही ध्यान रखा जाता है। इस विकल्पमें जहाँतक वस्तुस्थिति-का ताल्लुक है उसमें विज्ञानका सहारा तो अपेक्षणीय है ही, परन्तु विज्ञान केवल वस्तुस्थितिपर तो प्रकाश डालता है, उसका आत्मा या लोकके लाभालाभसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता है। तात्पर्य यह है कि विज्ञान केवल वस्तुके स्वरूप और विकासपर ही नजर रखता है, भले ही उससे आत्माको या लोकको लाभ पहुँचे या हानि पहुँचे। लेकिन आत्मकल्याण या लोककल्याणकी दृष्टिसे किया गया प्रतिपादन या कार्य वास्तविक ही होगा, यह नियम नहीं है वह कदाचित् अवास्तविक भी हो सकता है, कारण कि अवास्तविक प्रतिपादन भी कदाचित् किसी किसीके लिये लाभकर भी हो सकता है। जैसे सिनेमाओंके चित्रण, उपन्यास या गल्प वगैरह अवास्त-विक होते हुए भी लोगोंकी चित्तवृत्तिपर असर तो डालते ही हैं। तात्पर्य यह है कि चित्रण आदि वास्तविक न होते हुए यदि उनसे अच्छा शिक्षण प्राप्त किया जा सकता है तो फिर उनकी अवास्तविकताका कोई महत्त्व नहीं रह जाता है। जैन संस्कृतिके स्तुतिग्रन्थोंमें जो कहीं कहीं ईश्वरकर्तृत्वकी झलक दिखाई देती है वह इसी दृष्टिका परिणाम है जबकि विज्ञानकी कसौटीपर खरा न उतर सकनेके कारण ईश्वरकर्तृत्ववादका जैन दार्शनिक ग्रन्थोंमें जोरदार खण्डन मिलता है और इसी दृष्टिसे ही जैन संस्कृतिमें अज्ञानी और अल्पज्ञानी रहते हुए भी सम्यग्दृष्टिको ज्ञानी माना गया है; जबकि वास्तविकताके नाते जीव बारहवें गुणस्थानतक अज्ञानी या अल्प-ज्ञानी बना रहता है।

इस विकल्पके आधारपर जैन संस्कृतिको दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—एक आध्यात्मिक और दूसरा भौतिक।

जैन संस्कृतिके उक्त प्रकारसे आध्यात्मिक और भौतिक ये दो भाग तो हैं ही, परन्तु सभी संस्कृतियोंके समान इसका एक तीसरा भाग आचार या कर्त्तव्यसम्बन्धी भी है। इस तरह समूची जैन संस्कृतिको यदि विभक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना चाहें तो वह उक्त तीन भागोंमें विभक्त की जा सकती है। इनमेंसे आध्यात्मिक विषयका प्रतिपादक करणानुयोग, भौतिक विषयका प्रतिपादक द्रव्यानुयोग और आचार या कर्त्तव्य विषयका प्रतिपादक चरणानुयोग इस तरह तीनों भागोंका अलग-अलग प्रतिपादन करनेवाले तीन अनुयोगोंमें जैन आगमको भी विभक्त कर दिया गया है।

तत्त्वार्थसूत्र मुख्यतः आध्यात्मिक विषयका प्रतिपादन करनेवाला ग्रन्थ है, कारण कि इसमें जो कुछ लिखा गया है वह सब आत्मकल्याणकी दृष्टिसे ही लिखा गया है अथवा वही लिखा गया है जो आत्म-कल्याणकी दृष्टिसे प्रयोजन भूत है, फिर भी यदि विभाजित करना चाहें तो कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थके पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, छठे, आठवें और दशवें अध्यायोंमें मुख्यतः आध्यात्मिक दृष्टि ही अपनायी गयी हैं, इसी तरह पाँचवें अध्यायमें भौतिक दृष्टिका उपयोग किया गया है और सातवें तथा नवम अध्यायोंमें विशेषकर आचार या कर्त्तव्य सम्बन्धी उपदेश दिया गया है।

तत्त्वार्थसूत्र आध्यात्मिक दृष्टिसे ही लिखा गया है या उसमें आध्यात्मिक विषयका ही प्रतिपादन किया गया है यह निष्कर्ष इस ग्रन्थको लेखनपद्धतिसे जाना जा सकता है। इस ग्रन्थका 'सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' यह पहला सूत्र है, इसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्रको मोक्षका मार्ग बतलाया गया है। तदनन्तर 'तत्त्वार्थ-श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' इस सूत्र द्वारा तत्त्वार्थोंके श्रद्धानको सम्यक्-दर्शनका स्वरूप बतलाते हुए 'जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्' इस सूत्रद्वारा जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष रूपसे उन तत्त्वार्थोंकी सात संख्या निर्धारित कर दी गयी है और द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ-अध्यायोंमें जीवतत्त्वका, पञ्चम अध्यायमें अजीवतत्त्वका, छठे और सातवें अध्यायोंमें आस्रव तत्त्वका, आठवें अध्यायमें बन्धतत्त्वका, नवम अध्यायमें संवर और निर्जरा इन दोनों तत्त्वोंका और दशवें अध्यायमें मोक्षतत्त्वका इस तरह क्रमशः विवेचन करके ग्रन्थको समाप्त कर दिया गया है।

जैन आगममें वस्तुविवेचनके प्रकार

जैन आगममें वस्तुतत्त्वका विवेचन हमें दो प्रकारसे देखनेको मिलता है—कहीं तो द्रव्योंके रूपमें और कहीं तत्त्वोंके रूपमें। वस्तु-तत्त्व-विवेचनके इन दो प्रकारोंका आशय यह है कि जब हम भौतिक दृष्टिसे अर्थात् सिर्फ वस्तुस्थितिके रूपमें वस्तुतत्त्वकी जानकारी प्राप्त करना चाहेंगे तो उस समय वस्तुतत्त्व जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छः द्रव्यों[1]के रूपमें हमारी जानकारीमें आयेगा और जब हम आध्यात्मिक दृष्टिसे अर्थात् आत्मकल्याणकी भावनासे वस्तुतत्त्वकी जानकारी प्राप्त करना चाहेंगे तो उस समय वस्तुतत्त्व जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वोंके[2] रूपमें हमारी जानकारीमें आयगा। अर्थात् जब हम 'विश्व क्या है ?' इस प्रश्नका समाधान करना चाहेंगे तो उस समय हम इस निष्कर्षपर पहुँचेंगे कि जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छः द्रव्योंका समुदाय ही विश्व है और जब हम अपने कल्याण अर्थात् मुक्तिकी ओर अग्रसर होना चाहेंगे तो उस समय हमारे सामने ये सात प्रश्न खड़े हो जावेंगे—(१) मैं कौन हूँ ?, (२) क्या मैं बद्ध हूँ ?, (३) यदि बद्ध हूँ तो किससे बद्ध हूँ ?, (४) किन कारणोंसे मैं उससे बद्ध हो रहा हूँ ?, (५) बन्धके वे कारण कैसे दूर किये जा सकते हैं ? (६) वर्तमान बन्धनको कैसे दूर किया जा सकता है ? और (७) मुक्ति क्या है ? और तब इन प्रश्नोंके समाधानके रूपमें जीव, जिससे जीव, बंधा हुआ है ऐसा कर्म-नोकर्मरूप पुद्गल, जीवका उक्त दोनों प्रकारके पुद्गलके साथ संयोगरूप बन्ध,

१. तत्त्वार्थसूत्र ५-१, २, ३, ३९।

२. जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्। —तत्त्वार्थसूत्र, १-४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस बन्धके कारणीभूत मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योगरूप आस्रव, इन मिथ्यात्व आदिकी समाप्तिरूप संवर, तपश्चरणादिके द्वारा वर्तमान बन्धनको ढीला करनेरूप निर्जरा और उक्त कर्म-नोकर्मरूप पुद्गलके साथ सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद कर लेनेरूप मुक्ति ये सात तत्त्व हमारे निष्कर्षमें आवेंगे।

भौतिक दृष्टिसे वस्तुतत्त्व द्रव्यरूपमें ग्रहीत होता है और आध्यात्मिक दृष्टिसे वह तत्त्वरूपमें ग्रहीत होता है। इसका कारण यह है कि भौतिक दृष्टि वस्तुके अस्तित्व, स्वरूप और भेद-प्रभेदके कथनसे सम्बन्ध रखती है और आध्यात्मिक दृष्टि आत्माके पतन और उसके कारणोंका प्रतिपादन करते हुए उसके उत्थान और उत्थानके कारणोंका ही प्रतिपादन करती है। तात्पर्य यह है कि जब हम अवस्तुके अस्तित्वकी ओर दृष्टि डालते हैं तो उसका वह अस्तित्व किसी-न-किसी आकृतिके रूपमें ही हमें देखनेको मिलता है। जैन संस्कृतिमें वस्तुकी यह आकृति ही द्रव्यपद वाच्य है। इस तरहसे विश्वमें जितनी अलग-अलग आकृतियाँ हैं उतने ही द्रव्य समझना चाहिये। जैन संस्कृतिके अनुसार विश्वमें अनन्तानन्त आकृतियाँ विद्यमान हैं अतः द्रव्य भी अनन्तानन्त ही सिद्ध हो जाते हैं। परन्तु इन सभी द्रव्योंको अपनी-अपनी प्रकृतियों अर्थात् गुणों और परिणमनों अर्थात् पर्यायोंकी समानता और विषमताके आधारपर छह वर्गोंमें संकलित कर दिया गया है अर्थात् चेतनागुण-विशिष्ट अनन्तानन्त आकृतियोंको जीवनामक वर्गमें, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श गुणविशिष्ट अणु और स्कन्धके भेदरूप अनन्तानन्त आकृतियोंको पुद्गल-नामक वर्गमें, वर्तनालक्षण विशिष्ट असंख्यात आकृतियोंको काल-नामक वर्गमें, जीवों और पुद्गलोंकी क्रियामें सहायक होनेवाली एक आकृतिको धर्मनामक वर्गमें, उन्हीं जीवों और पुद्गलोंके ठहरनेमें सहायक होने वाली एक आकृतिको अधर्म-नामक वर्गमें तथा समस्त द्रव्योंके अवगाहनमें सहायक होने वाली एक आकृतिको आकाश-नामक वर्गमें संकलित किया गया है। यही कारण है कि द्रव्योंकी संख्या जैन संस्कृतिमें छह ही निर्धारित कर दी गई है।

इसी प्रकार आत्मकल्याणके लिये हमें उन्हीं बातोंकी ओर ध्यान देनेकी आवश्यकता है जो कि इसमें प्रयोजनभूत हो सकती हैं। जैन संस्कृतिमें इसी प्रयोजनभूत बातको तत्त्व नामसे पुकारा गया है, ये तत्त्व भी पूर्वोक्त प्रकारसे सात ही होते हैं।

इस कथनसे एक निष्कर्ष यह भी निकल आता है कि जो लोग आत्मतत्त्वके विवेचनको अध्यात्मवाद और आत्मासे भिन्न दूसरे अन्य तत्त्वोंके विवेचनको भौतिकवाद मान लेते हैं उनकी यह मान्यता गलत है क्योंकि उक्त प्रकारसे, जहाँपर आत्माके केवल अस्तित्व, स्वरूप या भेद-प्रभेदोंका ही विवेचन किया जाता है वहाँपर उसे भी भौतिकवादमें ही गर्भित करना चाहिये और जहाँपर अनात्मतत्त्वोंका भी विवेचन आत्मकल्याणकी दृष्टिसे किया जाता है वहाँपर उसे भी अध्यात्मवादकी कोटिमें ही समझना चाहिये। यह बात तो हम पहले ही लिख आये हैं कि जैन संस्कृतिमें अध्यात्मवादको करणानुयोग और भौतिकवादको द्रव्यानुयोग नामोंसे पुकारा गया है।

इस प्रकार समूचा तत्त्वार्थसूत्र आध्यात्मिक दृष्टिसे लिखा जानेके कारण आध्यात्मिक या करणानुयोगका ग्रन्थ होते हुए भी उसके भिन्न-भिन्न अध्याय या प्रकरण भौतिक अर्थात् द्रव्यानुयोग और चारित्रिक अर्थात् चरणानुयोगकी छाप अपने ऊपर लगाये हुए हैं, जैसे पाँचवें अध्यायपर द्रव्यानुयोगकी और सातवें तथा नवम अध्यायोंपर चरणानुयोगकी छाप लगी हुई है।

तत्त्वार्थसूत्रके प्रतिपाद्य विषय

तत्त्वार्थसूत्रमें जिन महत्त्वपूर्ण विषयोंपर प्रकाश डाला गया है वे निम्नलिखित हो सकते हैं—

'सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तथा इनकी मोक्षमार्गता, तत्त्वोंका स्वरूप, वे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवादि सात ही क्यों ? प्रमाण और नय तथा इनके भेद, नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव, जीवकी स्वाधीन और पराधीन अवस्थायें, विश्वके समस्त पदार्थोंका छह द्रव्योंमें समावेश, द्रव्योंकी संख्या छह ही क्यों ? प्रत्येक द्रव्यका वैज्ञानिक स्वरूप, धर्म और अधर्म द्रव्योंकी मान्यता, धर्म और अधर्म ये दोनों द्रव्य एक-एक क्यों ? तथा लोकाशके बराबर इनका विस्तार क्यों ? आकाशद्रव्यका एकत्व और व्यापकत्व, कालद्रव्यकी अणुरूपता और नानारूपता, जीवकी पराधीन और स्वाधीन अवस्थाओंके कारण, कर्म और नोकर्म, मोक्ष आदि।'

इन सब विषयोंपर यदि इस लेखमें प्रकाश डाला जाय तो यह लेख एक महान् ग्रन्थका आकार धारण कर लेगा और तब वह ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्रके महत्त्वका प्रतिपादक न होकर जैन संस्कृतिके ही महत्त्वका प्रतिपादक हो जायगा, इसलिए तत्त्वार्थसूत्रमें निर्दिष्ट उक्त विषयों तथा साधारण दूसरे विषयोंपर इस लेखमें प्रकाश न डालते हुए इतना ही कहना पर्याप्त है कि इस सूत्रग्रन्थमें सम्पूर्ण जैन संस्कृतिको सूत्रोंके रूपमें बहुत ही व्यवस्थित ढंगसे गूँथ दिया गया है। सूत्रग्रन्थ लिखनेका काम बड़ा ही कठिन है, क्योंकि उसमें एक तो संक्षेपसे सभी विषयोंका व्यवस्थित ढंगसे समावेश हो जाना चाहिए। दूसरे उसमें पुनरुक्तिका छोटे-से-छोटा दोष नहीं होना चाहिये। ग्रन्थकार तत्त्वार्थसूत्रको इसी ढंगसे लिखनेमें सफल हुए हैं, यह बात निर्विवाद कही जा सकती है।

उपसंहार

बड़े-बड़े विद्वानोंके सामने विश्व स्वयं एक पहेली बन कर खड़ा हुआ है। संसारकी दुःखपूर्ण अजीब-अजीब घटनाओंसे उद्विग्न आत्मोन्निनीषु लोगोंके सामने आत्मकल्याणकी भी एक समस्या है। इसके अतिरिक्त मानवमात्रकी जीवन-समस्या तो, जिसका हल होना पहले और अत्यन्त आवश्यक है, बड़ा विकराल रूप धारण किये हुए है। इन सब समस्याओंको सुलझानेमें जैन संस्कृति पूर्णरूपसे सक्षम है। तत्त्वार्थसूत्र—जैसे महान ग्रन्थोंका योग सौभाग्यसे हमें मिला हुआ है और इन ग्रन्थोंका पठन-पाठन भी हम लोग सतत किया करते हैं। परन्तु हमारी ज्ञानवृद्धि और हमारा जीवनविकास नहीं हो रहा है, यह बात हमारे लिये गम्भीरता-पूर्वक सोचनेकी है। यदि हमारे विद्वानोंका ध्यान इस ओर जावे तो इन सब समस्याओंका हल हो जाना असम्भव बात नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org